चतुर्थ अध्याय

व्यष्टि जीवन से सम्पर्कित विशिष्ट व्यक्ति

व्यष्टि-जीवन से सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्ति

कवि

कवि समाज के विचारों का निर्माता होता है। उसकी वाणी में वह जादू होता है जो युग की विचार-धारा को बदल डाले। वह वैचारिक क्रान्ति का अग्रदूत होता है। कवि व्यक्ति के जीवन में, परिवार के सदस्यों में अथवा सारे राष्ट्र में कभी-कभी ऐसे विचार भर देता है जिनसे बड़ी-बड़ी घटनाएँ घट जाती हैं और बड़े-बड़े परिवर्त्तन हो जाते हैं। कई बार कवियों ने देश के इतिहास को बदल डाला है। वह लोगों से दूर रहकर भी अपनी वाणी के वैभव से उन्हें प्रभावित करता रहता है।

गुप्तजी ने अपने काव्यों में कवियों का यत्र-तत्र उत्कृष्ट वर्णन किया है। कवि भी कई प्रकार के होते हैं। राजकवि का कार्य अपने आश्रयदाताओं को अपनी काव्य-चातुरी से प्रसन्न करना होता है। गुप्तजी ने उसीप्रकार राजकवि बाल्मी का वर्णन करते हुए अपने खण्डकाव्य " हंस में मंग " में कहा है कि कविवर " बाल्मी " कविता करने में अत्यन्त सिद्धहस्त हैं। एक दिन वे राजसभा में समानीत मूर्त्ति की एक नयी व्याख्या करते हैं :-

" भूप के सम्मुख सभा में मूर्त्ति रखी थी जहाँ,
राज-कवि बैठे हुए थे विज्ञ " बाल्मी " वहाँ।
देखकर उसको उन्होंने कर विचित्र विवेचना,
पद्य राणा को सुनाया एक यों तत्क्षण बना।"[1]

सभा में मूर्त्ति को देखकर बाल्मी राजा की प्रशंसा करने लगते हैं और मूर्त्ति की भंगिमाओं के मनोनुकूल अर्थ निकालने लगते हैं :-

" एक ऊँचा एक नीचा, एक कर सम्मुख किये,
एक ग्रीवा पर धरे वह कह रही शोभा लिये -

1- मैथिलीशरण गुप्त - हंस में मंग : संस्करण 2026 वि० : पृष्ठ - 6

स्वर्ग में, पाताल में नृप आप-सा दानी नहीं,
शीश मैं अपना कटाऊँ जो मिले कोई कहीं।" [1]

गुप्तजी ने कवि के गुण एवं दोषों का वर्णन किया है। गुप्तजी के अनुसार चाटुकारिता कवि को शोभा नहीं देती। सुकवि को स्पष्ट रूप से राज्य के गुण एवं दोषों का वर्णन करना चाहिए इस तथ्य को बताते हुए उनका कहना है :-

" दुरुपयोग न योग्य है करना कभी शक्ति का
चाटुकारों में न होता लेश भी प्रभु - भक्ति का

x x x x

" सतत राज्य- प्रबन्ध के गुण- दोष जो निर्भय कहे,
क्यों न ऐसा सुकवि नृप को नित्य आवश्यक रहे।
किन्तु तुम जैसे सुकवि भी चाटुकार बने जहाँ,
है दुराशा भूप के कल्याण की आशा वहाँ।। "

x x x x

" स्वर्ग में, पाताल में, नृप! आप सा दानी नहीं
क्या अतिशयोक्ति इस कथन से की गई वाणी नहीं।" [2]

चाटुकार कवि राजा की झूठी प्रशंसा तो करते हैं, परन्तु यदि उनमें थोड़ा भी आत्मगौरव होता है तो अपने किए कुकर्म पर तिरस्कृत होने पर वह आत्महत्या तक कर डालते हैं। राजा के मुख से अपनी चाटुकारिता की निन्दा सुनकर कवि वारुजी अपमानित एवं लज्जित होकर आत्मघात कर लेते हैं। सुकवि अपने अपमान और अयश को मरण से भी बुरा मानते हैं :-

" तब उन्होंने शीश अपना काट डाला आप ही !
मारता है बस मनुज को मानसिक संताप ही।

1- मैथिलीशरण गुप्त - हंग में भंग : संस्करण 2026 वि० : पृष्ठ - 6
2- वही, पृष्ठ - 11-12

मृत्यु ही गति दीखती गौरव-गमन के शोक में,
है मरण से भी बुरा अपमान होना लोक में।।"[1]

इस घटना के वर्णन से यह भी प्रकट होता है कि कवि कार्यों की लौकिक स्वीकृति का बड़ा महत्त्व था। कवि लोक-भावना और नैतिक मूल्य-बोध के प्रति आस्थावान होता था।

प्रेमी-प्रेमिका

प्रीति एक ऐसी प्रबल और विलक्षण मनोवृत्ति है जो सामाजिक जीवन में अनेक जटिलताओं की सृष्टि करती है। इस वृत्ति का प्रतिफलन नाना रूपों में होता है। कहीं यह शुद्ध मैत्री का रूप धारण करती है, कहीं श्रद्धा, अनुराग वा सामान्य आकर्षण का रूप धारण कर लेती है। इन सभी रूपों का सामाजिक जीवन में विशेष महत्त्व है, किन्तु प्रणय का क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक व्यापक होता है। प्रणय का उदय ऐसे वय में होता है जब व्यक्ति की शारीरिक क्षमता और भावावेग सर्वाधिक प्रबल होता है। उस समय वह किसी व्यवधान को सहना पसन्द नहीं करता। इसलिए प्रणय वा प्रेम का प्रभाव अतिशय व्यापक माना गया है। वह बहुधा जीवन की दिशा और रूप को बदल डालता है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य-ग्रन्थों में प्रेमी-प्रेमिकाओं का चित्रण कई रूपों में किया है। अधिकांशत: उन्होंने सामाजिक आदर्श में सहायक प्रेम-भावना की प्रशस्ति के गीत गाये हैं। उनका विश्वास है कि उच्च कोटि की भारतीय प्रेमिकाएँ अपने प्रेमी की जीवन-यात्रा को सुखद, सरस और अभ्युदयोन्मुखी बनाने का प्रयास करती हैं। वे प्रेमी के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को प्रस्तुत रहती हैं। उनका प्रेम केवल भोग के लिए नहीं होता है। प्रेमिका अपने प्रेमी का सदैव मंगल चाहती है। वह कहीं भी रहे, सुखी रहे यही उसकी कामना होती है। ब्रजवासिनी गोपी

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग - संस्करण 2026 वि० ; पृष्ठ - 14

अपने प्रेमी कृष्ण को सुखी देखना चाहती है। वह कृष्ण के मित्र उद्धव से प्रार्थना करती हुई कहती है :-

"जहाँ रहे बस सुखी रहे वह,
दुःख हमारा अपना।
यौवन-सा शैशव था उसका,
यौवन का क्या कहना!
कुब्जा से विनती कर देना -
" उसे देखती रहना!"[1]

ब्रज की गोपिकाएँ कृष्ण की प्रेमिकाएँ हैं। कृष्ण का ब्रज से मथुरा की ओर प्रयाण करने पर उनके विरह में गोपिकाएँ उलझन में पड़ी हुई हैं। वे अपने प्रेमी के आने की उत्कंठा में मृगी के समान चौंक पड़ती हैं :-

"उस उत्कंठा-सी, जो क्षण-क्षण
चौंक उठे एणी-सी ;
खुल कर भी जो सुलझ न पाई,
उस उलझी वेणी-सी।"[2]

प्रेमी के विरह में प्रेमिका की स्थिति अत्यन्त करुण होती है। गुप्तजी ने गोपियों को कृष्ण-विरह में अत्यन्त दुःखी दिखाया है। प्रेमिकाएँ अपने प्रेमी कृष्ण के लिए उसी प्रकार भटकती हैं जिसप्रकार शून्य वृन्त पर भ्रमरी भ्रमण करती है। कवि की वाणी में गोपियों की अवस्था देखिए :-

"सम्पुटिता होकर भी अलि का
धर न सकी नलिनी-सी;

1- मैथिलीशरणगुप्त- द्वापर ; सं0 2021 वि0 ; पृष्ठ - 182
2- वही, पृष्ठ - 170

अथवा शून्य वृन्त पर उड़कर
मड़राई अलिनी-सी।[1]

सभी व्रजबालाएँ अपने प्रेमी के विरह में व्याकुल हैं :-

"चन्द्रोदय की बाट जोहती
तिमिर-तार-माला- सी;
एकएक व्रज बाला बैठी
जागरूक ज्वाला-सी।"[2]

प्रेमिकाएँ अपने प्रेमी को अपना सर्वस्व (लोक तथा परलोक) सब कुछ सौंप देती हैं। उसे अपने सिर माथे पर रखती हैं। गोपियाँ भी अपने प्रेमी कृष्ण को अप्रसन्न देखना पसन्द नहीं करतीं। उद्धव के साथ कृष्ण के न लौटने पर गोपियाँ अत्यन्त दुःखी हैं। उन्हें भय है कि क्या उनके विरुद्ध यहाँ किसी ने कुछ कहा है? वे एकदम उन्माद सी होकर कहती हैं :-

"उद्धव कहो नहीं लौटा क्यों
हाय! हमारा राजा
बजा यहाँ उसके विरुद्ध था
क्या विप्लव का बाजा?"[3]

आदर्श प्रेमिका बिना किसी विनिमय के प्रेम करती है। वह अपने प्रिय को प्रेम करने पर बाध्य नहीं करतीं, परन्तु उसकी अभिलाषा यही रहती है

1- मैथिलीशरणगुप्त- द्वापर ; सं० 2021 वि० ; पृष्ठ - 172
2- वही, पृष्ठ - 172
3- वही, पृष्ठ - 192

कि उसका प्रियतम भी उससे प्रेम करे। कुब्जा यह अच्छी तरह जानती है कि कृष्ण की अनेक प्रेमिकाएँ हैं, फिर भी वह एक मात्र कृष्ण की ही उपासिका बनकर रहना चाहती है। उसकी उक्ति में एक मुग्ध प्रेमिका के हृदय का प्रेम झलकता है:-

"तेरे जन अगणित, परन्तु मैं
एक विजनता तेरी;
बस इतनी ही मति है मेरी,
इतनी ही गति मेरी।"[1]

प्रेमिका अपना सर्वस्व प्रेमी पर न्योछावर कर देना चाहती है। कुब्जा अपने प्रेमी कृष्ण को अपना सब कुछ दे देना चाहती है :-

"मेरा अतिथि देव आवे तो,
मैं सिर- माथे लूँगी,
उसने मुझको देह दिया, मैं
उसे प्राण भी दूँगी।"[2]

कृष्ण के स्पर्श से उसका नारीत्व जाग उठता है। वह अपने प्रेमी पर आत्मसमर्पण करने का अधिकार दिखाती हुई कहती है :-

"वह कुबरा नी भी नारी है,
यह सरला भी नारी है,
आत्म समर्पण के दोनों जन,
हम समान अधिकारी।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; सं0 2021 वि0 ; पृष्ठ - 159
2- वही, पृष्ठ - 155
3- वही, पृष्ठ - 156

प्रेमी के मिलन की तीव्र उत्सुकता प्रेमिका को विकल बनाए रखती है। वह प्रत्येक आहट पर चौंक उठती है। रात्रि में उसे नींद नहीं आती :-

"पल-पल में तेरी आहट,
चौंकाती आती है,
किन्तु प्रतीक्षा में ही बेला,
बीत-बीत जाती है।"[1]

प्रेमिका में समर्पण की भावना निहित रहती है। कुब्जा राधा की प्रतिद्वन्दिनी न बनकर कृष्ण की सेविका ही बनी रहना चाहती है। कृष्ण युद्ध में विजित होकर आए हैं। कुब्जा उन्हें कुछ भेंट देना चाहती है :-

"कुब्जरानी के विजयी वरके
धरे चरण ही चेरी;
पर अपने अतिरिक्त भेंट क्या
हो सकती है मेरी।"[2]

कृष्ण के स्पर्शमात्र से कुब्जा के शरीर में बिजली सी कौंध गई। उसकी मुस्कराहट से कुब्जा के हृदय में कम्पन होने लगा और उसकी काया में परिवर्तन आ गया:-

"चमक गई बिजली-सी भीतर,
नस-नस चौंक पड़ी थी;
तन्वी, जन्म की कुब्जा क्षण में
सरला बनी खड़ी थी।
चिबुक हिलाकर छोड़ मुझे फिर
मायावी मुसकाया।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; सं0 2021 वि0 ; पृष्ठ - 156
2- वही, पृष्ठ - 146
3- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; सं0 2027 वि0 ; पृष्ठ - 147

गुप्तजी ने कुब्जा का चित्रण एक प्रेमिका के रूप में किया है। वह कृष्ण के रूप पर मुग्ध है। कृष्ण को देखकर उसका नारीत्व जाग उठा। वह सभी स्थलों पर कृष्ण का दर्शन करने लगी। कृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई वह कहती है :-

"कसी क्षीणकटि, पीन वक्ष था
कब अधरा ढके थे,
x x x
दुगुने-से दो भुज विशाल थे
पार्श्व छीलते-छीलते"।[1]
x x x
"चिबुक देख फिर चरण चूमने
चला चित्त फिर मेरा;
वे दो ओंठ न थे, राधे, था
एक फटा उर तेरा।"[2]

उसके रूप पर अत्यन्त मुग्ध होने के कारण वह कहती है :-

"देख लिया मैंने सहस्त्र दल
ले उस मुख की झाँकी।"[3]

प्रेमिकाएँ प्रेमी के विरह में अत्यन्त खिन्न हो जाती हैं। प्रेमी के उनसे दूर चले जाने पर उन्हें अश्रु-विमोचन के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता। अक्रूर कृष्ण को ब्रज से लेने आए हैं, उस समय गोपियों की क्या दशा होगी इसका चिंतन करते हुए वे आत्मकथन { स्वगतोक्ति } करते हैं :-

"बोल सकेगी वाष्प, वेग-वश

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; सं0 2027 वि0 ; पृष्ठ - 142
2- वही, पृष्ठ - 143
3- वही, पृष्ठ - 143

क्या कोई कुब्ज बाला;
चला जायगा खिला खिलाकर
उन्हें रिझाने वाला। [1]

गुप्तजी ने प्रेमी के रूप में कृष्ण का चित्रण किया है। कुब्जा के प्रति प्रेम-भाव के कारण कृष्ण ने उसके रूप सौन्दर्य में महान परिवर्तन कर दिया। कुब्जा के कथन से कृष्ण का प्रेम प्रकट है :-

" देख पैर उठते, चरणों से
हँस कर उन्हें दबाया;
मैं उठ गई और कूबड़ का
मैंने पता न पाया। "[2]

" अर्जन और विसर्जन " नामक खण्डकाव्य में कवि ने कर्त्तव्यपरायणा देश-प्रेमिका नारी का चित्रण किया है। सीरियन सुन्दरी इडोसिया युवक जोनस की प्रेयसी है। भावी पत्नी इडोसिया पति को रण में भेजने में हिचकिचाती नहीं। देश की रक्षा के लिए वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का भी त्याग कर सकती है। पति जोनस के यह कहने पर कि मैंने तुम्हें पाने के समय ही खो दिया, इडोसिया कहती है कि स्वदेश की रक्षा का समय आ गया है। इस समय हमें कामियों सा क्रन्दन नहीं करना चाहिए। प्रेमी को कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाती हुई वह कहती है :-

"सखे आज जब सबके
सम्मुख उपस्थित है जीवन-मरण का
प्रश्न, तब व्यक्तिगत स्वार्थ क्या उचित है ;
कातर हमारी मही माता दस्यु-दलिता

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि0 ; पृष्ठ -131
2- वही, पृष्ठ - 147

नीर-भरे नेत्रों से निहार रही हमको।
छाती पर भूरि, भार बोल नहीं पाती है,
और हम उसकी प्रसूति युवा-युक्ती
कामियों का क्रन्दन करे हा! यहाँ बैठके !
प्रेम के प्रलाप रहें, आज सब ओर से
निष्ठुर कर्त्तव्य ही पुकारता है हमको"।

* अर्जन और विसर्जन * नामक लघुकाय खण्डकाव्य में कवि ने अपने प्रेमी ओन्स का सुन्दर चित्रण किया है। वह अपनी भावी वधू इउठौसिया पर मुग्ध है। प्रेमिका कहती है कि युद्ध से मुँह मोड़कर हमलोगों का जाना उचित प्रतीत नहीं होता। इस पर ओन्स कहता है :-

"मेरी गति केवल तुम्हीं हो इउठौसिया
बोलो क्या करूँ मैं? प्रिये, यदि मैं मरूँ भी तो
केवल तुम्हारे लिए, अपने लिए नहीं।"[2]

* हिडिम्बा * नामक खण्डकाव्य में हिडिम्बा का चित्रण प्रेमिका के रूप में हुआ है। वह प्रेमी के लिए अपना साज शृंगार करके वन में आती है। वह भीम से कहती है :-

* चाहो तो कहो तुम भले ही इसे छलना
प्रिय-रुचि-हेतु चुना मैंने यह चोला है
नर वर मेरा अहा भारी भला भोला है।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - अर्जन और विसर्जन ; तृतीयावृत्ति 2014 वि॰; पृष्ठ-5
2- वही, पृष्ठ - 7
3- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वितीयावृत्ति,2013 वि०; पृष्ठ - 15

हिडिम्बा का चित्रण प्रेमिका के रूप में अत्यन्त सफल हुआ है। वह अपने प्रेमी को मृत्यु-मुख से बचाना अपना कर्तव्य मानती है। प्रिय को अपने भाई हिडिम्ब से बचाने के लिए उससे कहती है :-

"अच्छा रहने दो उसे देखने की हाय तुम,
खो न बैठो आप निज रक्षा का उपाय तुम।"[1]

वह अपने प्रियतम को कहीं दूर भाग चलने के लिए निवेदन करती हुई कहती है :-

"मैं भी उससे बचा न पाऊँगी तुम्हारे अंग,
भाग चलो प्यारे, हठ छोड़ अभी मेरे संग।"[2]

हिडिम्बा को अपने प्रियतम के हाथों मरना भी स्वीकार है। भीम के क्रुद्ध होकर पूछने पर कि क्या तू भी अपने भाई की तरह मरना चाहती है? वह उत्तर देती है :-

"प्रस्तुत मैं, प्यार किया मैंने जिसे एक बार,
उसके करों से मरना भी मुझे अंगीकार।"[3]

दाम्पत्य-सूत्र में बँधने से पूर्व पति-पत्नी प्रेमी-प्रेमिका के रूप में रहते हैं। दाम्पत्य में बँधने से पहले जो प्रेम होता है उसे रसाचार्यों ने पूर्वराग की संज्ञा से परिभाषित किया है। गुप्तजी ने अपने काव्य में स्त्री एवं पुरुष की इस स्थिति का भी चित्रण बड़े ही मन से प्रस्तुत किया है। राम और लक्ष्मण को पुष्प वाटिका में देखकर उर्मिला और सीता के :-

"दृग दर्शन हेतु क्या बढ़े।
उन पैरों पर फूल-से चढ़े।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त- हिडिम्बा ; द्वि0आवृत्ति ; 2013 वि0; पृष्ठ- 17
2- वही, पृष्ठ- 17
3- वही, पृष्ठ- 24,
4- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 366

पुरुष को देखकर नारी स्वभाविक रूप से मुग्ध होती है। सीता भी राम के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कह उठती है - " नव नील कमल है वहा।" राम के सौन्दर्य को देखकर उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं रहता और वे कह उठती हैं :-

" उनकी पद-धूलि जो धरूँ,
न अहल्या - अपकीर्ति से डरूँ।"[1]

डा० नगेन्द्र के अनुसार - " प्रथम दर्शन के इस चित्र में मनोविज्ञान और काम-शास्त्र दोनों का सुन्दर समावेश है। पहिले रूप-मोह, फिर विकलता [स्पर्श की] और अन्तमें एक साथ हर्ष-पुलक तीनों का क्रमिक विकास वैज्ञानिक है।"[2]

राजा जनक ने स्वयंवर सभा किया। कौशिक मुनि के साथ राम-लक्ष्मण भी वहाँ उपस्थित थे। सीता उर्मिला आदि भी वहाँ पहुँची। धनुषयज्ञ आरम्भ किया गया। समस्त राजागण प्रयत्न कर-करके हार गए --

" न रही नाक पिनाक न उठा।"[3]

तब राजा जनक अत्यन्त दुखी होकर कह उठते हैं --

" बस बाहुजता विलीन है,
वसुधा वीर-विहीन दीन है।"[4]

सभी राजा स्तब्ध रह गए -- किन्तु

" कहता यह बात कौन है
सुनता सत्कुल-जात कौन है।"[5]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 367
2- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ० सं०-सन 1940 ई०; पृष्ठ - 34
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2031 वि० ; पृष्ठ - 296
4- वही, पृष्ठ - 296
5- वही पृष्ठ - 297

गहवे प्रिय जो नहीं नहीं
सरयू ये बस नैन थे वहीं "।[1]

लक्ष्मण के इन शब्दों को सुनकर उर्मिला का मन कितने तीव्र वेग से आकर्षित हुआ होगा इसका पता सहज ही में लगाया जा सकता है।

उर्मिला एवं सीता दोनों राम लक्ष्मण के रूप पर मुग्ध हैं। परन्तु उर्मिला को भय है। वह धनुष के वृहत्‌रूप को देखकर धैर्य खोने लगती है। वह कहती है :-

" प्रभु चाप न जो चढ़ा सके।"[2]

परन्तु सीता को विश्वास है कि राम अवश्य ही चाप चढ़ाने में समर्थ होंगे क्योंकि --

चढ़ता उनसे न चाप जो
x x x
उठती यह भौंह भी भला
उनके ऊपर तो अवंचला "[3]

डा० नगेन्द्र के शब्दों में -- " इस आत्मविश्वास में, इस अभिमान में कितना गौरव है जिसके बिना उर्मिला- लक्ष्मण, सीता-राम का प्रेम काम-तृप्ति मात्र ही रह जाता।"[4]

<u>प्रेम में कुत्सा</u>

जहाँ रूपाकर्षण नैतिक सीमाओं का उल्लंघन करता है वहाँ वह कुत्सा का जनक हो जाता है। " नहुष " नामक खंडकाव्य में शची की सुन्दरता का

1- मैथिलीशरणगुप्त- साकेत ; 203? वि० ; पृष्ठ -297
2- वही, पृष्ठ - 295
3- वही, पृष्ठ - 295
4- डा० नगेन्द्र- साकेत एक अध्ययन ; प्रथम सं० - सन् 1940 ; पृष्ठ - 34

वर्णन बड़े ही अनूठे ढंग से हुआ है। सद्यः स्नाता शची सुरसरि से वसुन्धरा की भाँति निकली। नहुष सुधबुध खोकर उसके सौन्दर्य-रस का पान करने लगता है:-

रूप रानी! कंचुकी-सी दिखा नरनाथ की -,
जान पड़ी चेरियाँ-सी अप्सराएँ साथ की।[1]

*   *   *

एक ओर पर्त-सा त्वचा का आर्द्र पट था,
फूट-फट रूप दूने वेग से प्रकट था।
तो भी ढके अंग घने दीर्घ कच-भार से,
कुंकुम थी झलक किन्तु तीक्ष्ण असि-धार से।

*   *   *

मुक्ता-तुल्य बूंदे टपकी जो बड़े बालों से,
चू रहा था विष या अमृत वह कालों से?[2]

किन्तु नहुष का शची को हस्तगत करने का कार्य अनैतिक है। शची द्वारा तिरस्कृत होने पर नहुष के आत्मचिन्तन का चित्रण कवि ने बड़े ही सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है :-

" असुर पुलोम-पुत्री इन्द्राणी बने जहाँ,
नर भी क्यों इन्द्र नहीं बन सकता वहाँ?

*   *   *

साग्रह सुरों ने स्वयं सौंपी मुझे प्रभुता,
कैसी फिर आज यह वासवी की कटुता?"[3]

इस काव्य में नहुष की मनोदशा का सुन्दर चित्रण हुआ है। नहुष का संघर्ष इन्द्राणी से है। वस्तुतः नहुष की काम-लिप्सा का उसकी पौरुषमयी चेतना के

1- मैथिलीशरणगुप्त - नहुष ; सोलहवाँ सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 41
2- वही, पृष्ठ - 44 ,3-वही, पृष्ठ - 50

साथ यह संघर्ष है। इन्द्राणी को प्राप्त करने के लिए उसके मन में अनेक प्रकार के द्वन्द उठते हैं :-

तो क्यों मुझे देख वह सहसा चली गई!
आहा मैं छला गया हूँ, या वही छली गई!
एक यही फूल है जो हो सके पुनः कली।
इतने दिनों तक क्यों मैने सुध भी न ली![1]

× × ×

"इन्द्र होके भी मैं गृह भ्रष्ट-सा यहाँ रहा,
लाख अप्सराएँ रहें, इन्द्राणी कहाँ अहा।[2]

× × ×

"क्या शक्रत्व मेरा, जो मिली न शची भामिनी![3]

तत्कालीन समाज में दूती का महत्वपूर्ण स्थान था। दूती प्रिय के पास संदेश ले, दे आने का काम करती है। नहुष शची के सौन्दर्य पर मुग्ध है। कुत्सित प्रेमके क्षेत्र में प्रेम-सन्देश लेकर जो स्त्रियाँ दूती का कार्य करती हैं उन्हें शास्त्रों में कुट्टनी कहा गया है। नहुष अपने कुत्सित प्रयास में कुट्टनी का सहारा लेता है वह अपनी ओर से कुट्टनी के माध्यम से शची के पास कूट सन्देश पहुँचाता है। दूती शची से कहतीहै :-

" जय महादेवि, दासी आवेदन लाई है।

× × ×

माँग बार-बार क्षमा लज्जा-अनुताप से,
देव ने निवेदन किया है, यह आप से -

1- मैथिलीशरणगुप्त- नहुष ; सोलहवाँ सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 43
2- वही, पृष्ठ - 43
3- वही, पृष्ठ - 43

काम ने फँसाया मुझे ऐसा वैषम्य में,
राले चरणों का अपराधी किया अन्त में।"[1]

<u>सखी</u>

गुप्तजी की रचनाओं में अनेक स्थानों पर नारी के सखी रूप का चित्रण हुआ है। पति " तुलसीदास " की भर्त्सना करने के पश्चात् रत्नावली आज स्वयं अपनी भर्त्सना की कामना करती हुई सखी से कहती है :-

" सखि, मेरी भर्त्सना करें सब,
कहें मुझे अधमाधमा,
किन्तु आप अपने को अब भी
करूँ न मैं कैसे क्षमा। "[2]

यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपना दुःख किसी के प्रति व्यक्त कर देने से बोझ हल्का हो जाता है एवं यदि दुःख समदुःख भोगी मित्र या सखी के सामने प्रकट किया जाए तो कहना ही क्या।

सखी का स्थान महत्वपूर्ण है। आपत्ति, विपत्ति आने पर वह सखी को सांत्वना देती है। वह उसे धैर्य धारण करने के लिए कहती है। वियोगावस्था में सखी का दुःख सखी से देखा नहीं जाता। वह नाना प्रकार से उसे सांत्वना देने का प्रयत्न करती है :-

"धीरज न छोड़िए, प्रतीक्षा कर रहिए
निष्क्रिय हो बैठेंगे कभी वे भला कहिए।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त- नहुष ; सोलहवाँसंस्करण, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 47
2- मैथिलीशरणगुप्त- रत्नावली ; प्रथमावृत्ति, 2017 वि0 ; पृष्ठ - 8
3- मैथिलीशरणगुप्त- नहुष ; सोलहवाँ सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 18

शची के कहने पर कि -

" स्वामी भी कहाँ गये न जाने, मुझे छोड़ के,
वे भी छिप बैठे दु:खिनी से मुँह मोड़के।" [1]

सखी के हृदय को ठेस पहुँचती है। वह शची के दु:ख से दु:खी है तथा उसे आशा दिलाती है :-

" ऐसा कहना क्या देवि, आपको उचित है?
आपसे क्या उनका विभिन्न हिताहित है?" [2]

दैनिक जीवन में सखी-सहेली का महत्त्व कम नहीं है। कवि ने "विष्णु-प्रिया " नामक खण्डकाव्य में विष्णुप्रिया की सहेलियों का वर्णन किया है। वे अत्यन्त चटुल हैं। विष्णुप्रिया नित्यप्रति अपनी सखी सहेलियों के साथ गंगा के तीर जल लाने के लिए जाती हैं। यहीं गौरांग की माता शची भी रोज गंगा-स्नान को आती हैं। विष्णुप्रिया प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करती हैं। सखियाँ उसे चिढ़ाती हैं :-

" तू उन्हींके पैरों में प्रणाम करती है क्यों?" [3]

सखियाँ अन्त में ताड़ ही गईं और बोल उठीं -- " अब समझी मैं "-

" मानती हूँ गौरहरि योग्य वर तेरे ही,
तू भी उन्हीं के योग्य, तुझको बधाई है। " [4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - नहुष ; सोलहवाँ सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 18
2- वही, पृष्ठ - 18
3- मैथिलीशरणगुप्त - विष्णुप्रिया ; सप्तमावृत्ति, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 15
4- वही, पृष्ठ - 15

मित्र तत्कालीन समाज में

तत्कालीन समाज में मित्र से मिलने के समय कुछ न कुछ उपहार स्वरूप दिया जाता था। सुदामा अपने मित्र कृष्ण से मिलने के लिए रिक्त हाथ जाना नहीं चाहते। वे अपनी स्त्री से कहते हैं :-

" किन्तु मिलूँगा कैसे उससे
रिक्त पाणि, कल्याणी-
* * *
तदपि जानता है वह जी की,
बहुत बार चाखा ही;
मेरी भेंट आप क्या उसको,
पत्र,पुष्प,फल,जल ही;"[1]

अक्रूर नृशंस राजा कंस का अमात्य है, फिर भी उसका चित्रण कृष्ण के हितैषी के रूप में अतीव सुन्दर ढंग से हुआ है। अमात्य अक्रूर राजा की आज्ञा से कृष्ण को व्रज से मथुरा लाने के लिए जाता है, किन्तु उसे कृष्ण की शक्ति पर विश्वास है। यही सोच कर उसे सन्तोष प्राप्त होता है कि कृष्ण की जीत निश्चित है :-

" उसके लिए नहीं भय कोई,
निश्चय जय ही जय है ।"[2]

मित्र के रूप में कृष्ण का चित्र द्रष्टव्य है। वह अपने मित्रों की रक्षा शत्रु के हाथ से करते हैं एवं उन्हें परम निश्चिन्त कर देते हैं। सुदामा कहते हैं :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 222
2- वही, 2021 वि० ; पृष्ठ - 131

" रहा कौन तेरे दह में अब
नाग निरंकुश नामी
उसे नाथकर सबको उसने
किया सनाथ सहज में।"[1]

द्वापर खण्डकाव्य में कवि ने कृष्ण का चित्रण एक नेता एवं मित्र के रूप में किया है। समस्त ग्वाल-बाल उनके अद्भुत कार्य पर मुग्ध हैं। कृष्ण नेता के रूप में अत्यन्त कुशल हैं। वे परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना लेते हैं। ग्वाल-बाल को भी कृष्ण जैसे संरक्षक पर गर्व है। उनका कहना है कि कृष्ण गुणों का भंडार है, जिसके गुणों की सुगंध-मात्र से ही भय के कीटाणु स्वत: ही भाग गये हैं, जो अज्ञान-वश उसके लिए द्रोह करने को तत्पर हुए थे, ऐसे अनेक असुर उसके समक्ष आ-आ कर गिरे हैं -

" हम मृग, वह मद, किन्तु अमर हैं
हम उसके संबंध से;
भागे भय के कीट आप ही
उस गुण-धर के गंध से
गिरे असुर आ- आ कर कितने
द्रोह- मोह - वश अंध से।"[2]

कृष्ण अपने मित्रों में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इन्द्र की पूजा बंद कराने पर जब इन्द्र ने कुपित होकर सात-दिन, सात-रात निरंतर वर्षा के द्वारा ब्रज भूमि को जल में डुबो दिया, तब एक मित्र होने के नाते कृष्ण ने ग्वालबालों को जल में डूबने से बचाकर सच्चे मित्र का परिचय दिया।

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 22।
2- वही, 2027 वि० ; पृष्ठ - 67

ग्वाल बाल कहते हैं :-

" उठा लिया सचमुच पहाड़ ही
गौरवमय गोविन्द ने ;
फूला इन्द्र और उसका रस
दिया मुकुन्द- मिलिन्द ने। "[1]

x x x

अपने मित्र कृष्ण के सम्बंध में ग्वालबालों का कहना है :-

" अब अजगर से हमें बचाया
उसी अलौकिक शील ने
विष ही झाड़ दिया कालिय का
सहृदय सदय सलील ने। "[2]

शत्रु

" हिडिम्बा " में शत्रु का चित्रण करते हुए गुप्तजी ने बताया है कि वीर शत्रु नारी को सदैव रक्षणीया मानते हैं। शत्रु-पक्ष राक्षस की बहन हिडिम्बा से युधिष्ठिर कहते हैं :-

" वैरी की बहिन भी तू स्त्री है, आप हो तेरा,
अपने समान हमें क्यों न प्राण हो तेरा ! "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 71
2- वही, पृष्ठ - 73
3- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि०वृत्ति 2013 वि० ; पृष्ठ - 25

गुप्तजी के अनुसार शत्रु में मानवीय गुण भी संभव है। हिडिम्बा को मारने के पश्चात् पांडवों ने उसका मित्रवत् दाह संस्कार किया :-

" मित्र-सम शत्रु का संस्कार किया सबने।"[1]

शत्रु-भाव की पराकाष्ठा का चित्रण रावण के सीताहरण के कृत्य में दर्शाया गया है। " प्रदक्षिणा " में गुप्तजी ने इसे इस रूप में चित्रित किया है :-

" वैर- शुद्धि के मिष उस खल ने
सीता हरने की ठानी -
तब मारीच निशाचर से वह
पहले कपट मंत्र करके,
उसे साथ ले दण्डक - वन में
आया साधु - वेश धरके -
हेम - हरिण बन गया वहीं पर
आकर मायावी मारीच
श्री सीता के समुख पाकर
लगा लुभाने उनको नीच "[2]

x x x

" शून्याश्रम से इधर दशानन,
मानों श्येन- कपोती को,
हर ले चला विदेह सुता को,
भय से स्तम्भित होती को। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि0वृत्ति ;2013 वि0 ; पृष्ठ - 27
2- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवां सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 39
3- वही, पृष्ठ - 44

" साकेत " में भी रावण का शत्रु- भाव से चित्रण हुआ है। वहीं रावण के विषय में विस्तृत चित्रण मिलता है। लघु प्रबन्ध काव्यों में गुप्तजी ने वैयक्तिक कारणों के आधार पर शत्रुता तथा तज्जनित परिणतियों का चित्रण किया है।

अत्याचारियों के प्रतीक के रूप में कंस का चित्रण किया गया है। वह अपनी बहन और अपने बहनोई तथा उनकी संतानों के प्रति भी सदय नहीं है। बहन के पुत्र भागिनेय कहलाते हैं। मामा-भागिनेय का सम्बन्ध अत्यन्त सुन्दर होता है। परन्तु मामा के रूप में कंस ने उसे भी विकृत कर डाला और अपने सात भागिनेयों को मार डाला। उसके अत्याचार और शत्रु-भावकी जब पराकाष्ठा हो गयी तभी कृष्ण ने शत्रु-संहार किया :-

" भागिनेय से अपना मरना
सत्य उन्होंने माना-
तो फिर सत्य अनृत क्यों होगा,
इसे क्यों नहीं जाना।"[1]

अतिथि

समाज में अतिथियों का स्वागत, सत्कार तथा सम्मान होता था। कुन्ती अपने पाँचो पुत्रों को लेकर ब्राह्मण के घर जाती है एवं कहती है :-

" मैं अतिथि हूँ सुत साथ है।"[2]

ब्राह्मणी उसका स्वागत करती हुई बोली -

" आओ अहा ! हमसब विशेष सनाथ हैं।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 129
2- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 8
3- वही, पृष्ठ - 8

वह उनलोगों को उचित स्वागत करने से पीछे नहीं हटती

" सबने उचित स्वागत किया
सुख से उन्हें आश्रय दिया। "[1]

गुप्तजी ने अपने काव्यों में अतिथियों के सत्कार के विषय में भी लिखा है। तत्कालीन समाज में शिष्टाचार में अतिथि सत्कार को सर्वोपरि स्थान दिया जाता था । गोपियाँ अपने प्रेमी कृष्ण के मित्र को उचित सम्मान देती हैं :-

" प्रिय के बन्धु, अतिथि हो उद्धव,
तुम सम्माम्य हमारे। "[2]

अतिथि-सत्कार को अपने देश में कितना पवित्र माना गया है, इसकी एक झाँकी देखिए :-

" आतिथ्य और अतिथि-कथा,
तेरी पुरानी वह प्रथा
प्राचीन भारत, आज भी सुनवीन है।
अब अतिथि भिक्षुक मात्र हैं,
अधिकांश यज्ञ अमात्र हैं ;
भिक्षा बना व्यवसाय, तू भी दीन है। "[3]

अतिथि का स्वागत सत्कार करना तथा गुणीजनों का समादर करना राजा का कर्त्तव्य है। " प्रदक्षिणा " नामक काव्य में राजा जनक ने कौशिक मुनि को सीता के स्वयंवर में आमंत्रित किया। उन्होंने राम, लक्ष्मण सहित मुनि

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 8
2- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2927 वि० ; पृष्ठ - 182
3- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 6

का यथोचित स्वागत सत्कार किया। राजा जनक ने मुनि को उच्च आसन देकर समा-दृत किया :-

" लिया जनक नृप ने आदर से,
किया उचित स्वागत सत्कार।
दिया उन्हें सबसे उच्चासन,
हुए वहीं तीनों आसीन। "[1]

परिपक्व वय में, पुत्र के योग्य हो जाने पर राजा के लिए उचित है कि वह राज्य-भार पुत्र के ऊपर अर्पित कर दे और स्वयं वानप्रस्थ ग्रहण कर ईश्वर चिन्तन में प्रवृत्त हो जाए :-

" सौंप राज्य का भार राम को,
चाहा सुख से वन जाना। "[2]

भृत्य

पुरुष के भृत्य रूप का चित्रण अनेक स्थलों में हुआ है। गुप्तजी ने आदर्श भृत्य को बलवान, समर्थ, साहसी वीर, दृढ़, निर्भीक, बुद्धिमान, विवेकशील, विनम्र, जितेन्द्रीय, संयमशील सरल, मात्सर्यहीन, धार्मिक, आशावान, स्वार्थहीन कर्तव्यपरायण देशप्रेमी एवं योद्धा के रूप में चित्रित किया है।

" रंग मे भंग " नामक काव्य में चित्तौड़-पति लाखा नृपति जब अपने प्रण-पालन के लिए कृत्रिम बूंदी-दुर्ग का निर्माण करते हैं तो बूंदी नरेश राना के

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं०, सं० 2026 वि०; पृष्ठ -15
2- वही, पृष्ठ -

वीर, देशप्रेमी भृत्य कुम्भ अपने देश के सम्मान की रक्षा करते हुए अपने प्राण तक न्योछावर कर देता है। जन्मभूमि के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करते हुए भृत्य कुम्भ कहता है :-

" स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म-भूमि कही गई ;
सेवनीया है सभीको वह महा महिमामयी
फिर अनादर क्या उसीका मैं खड़ा देखा करूँ,
भीरु हूँ क्या मैं अहो! जो मृत्यु से मन में डरूँ" .[1]

x x x

" क्रुद्ध हो तब कुम्भ ने कर से उन्हे उत्तर दिया,
किन्तु राना ने उसे झट ढाल पर ही ले लिया। "[2]

x x x

" उष्ण शोणित-धार से धरणी वहाँ की धो गई,
कुम्भ के तुम कृतकृत्य बूँदी हो गई। "[3]

भृत्य समाज भी परिवार का महत्वपूर्ण अंग है। उसकी कई कोटियाँ होती हैं। सामान्य और विशिष्ट सेवकों को भृत्य माना जाता है। दशरथ के ही परिवार में सुमन्त्र को राम-लक्ष्मण काका कहते हैं और वह उन्हें स्नेह से भइया कहकर पुकारते हैं। दशरथ के परिवार में भृत्य उनके मंगलाकांक्षी हैं। राम को वन जाते हुए देखकर भृत्य समाज की व्याकुलता देखिए :-

" झुकाकर प्रथम सिर फिर टक लगाकर
निरखते पार्श्व से थे भृत्य आकर। "[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंगमें भंग ; सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 32
2- वही, पृष्ठ - 33
3- वही, पृष्ठ - 34
4- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 88

भृत्य के कष्ट को स्वामी सहन नहीं कर सकते। सेवकों का ध्यान रखना वे अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। माण्डवी ने जब भरत से कहा :-

" राजनीति बाधक न बने तो,
तनिक और ठहरें इस ठौर।"[1]

तो भरत ने उत्तर दिया :-

" तो कुछ नहीं किन्तु भृत्यों को
प्रिये कष्ट ही होगा और।"[2]

माण्डवी समझ गई कि प्रिय भृत्यों की व्यथा से व्यथित है। माण्डवी भी भरत की बात में अपनी सहमति प्रकट करती हुई कहती है :-

" उन्हें हमारे सुख से बढ़कर नाथ नहीं कोई संतोष ।
सदा हमारे दुःखों पर जो अपने को देते हैं दोष।"[3]

सुमन्त्र राज-परिवार के सुख-दुःख के साथी थे। वे अत्यन्त घनिष्ट होकर इस परिवार से सम्बन्धित थे। वे भी इस परिवार के एक सदस्य-से थे। राम को वन जाते हुए देखकर उनके भी दुःख की सीमा नहीं रहती। वे कहते हैं :-

" राम! क्या कहूं मैं अब हा !
बनकर भी बिगड़ा सब हा !"[4]

दासी या भृत्य का सम्बन्ध निकटतर सम्बन्ध ही माना जाएगा, क्योंकि सेवक सदैव स्वामी के समक्ष रहकर उनकी आज्ञा का पालन करता है,

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 400
2- वही, पृष्ठ - 400
3- वही, पृष्ठ - 400
4- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 111

किन्तु यही सम्बन्ध जब किसी कारणवश खराब होने लगते हैं तब ये दूर के सम्बन्ध प्रतीत होने लगते हैं। दासी का कार्य स्वामी-सेवा करना है। वह समय-समय पर अपनी स्वामिनी को अच्छी बातों के अतिरिक्त बुरी भावनाओं की ओर भी प्रेरित करती है। मन्थरा उसी प्रकार कैकेयी को कुमन्त्रणा देती है :-

" अरी तू क्यों उदास है आज;
वत्स जब कल होगा युवराज;
x x x
सोच है मुझको निस्सन्देह
भरत जो है मामा के गेह"[1]

कैकेयी के यह कहने पर कि राम और भरत दोनों में क्या भेद है! मेरे लिए दोनों समान हैं।

दासी कहती है :-

" सवेरे दिखला देगा अर्क ।
राजमाता होंगी जब एक
दूसरी देखेंगी अभिषेक। "[2]

स्वामी को यह अधिकार है कि अपराध करने पर वह सेवक को दण्ड दे।

गुप्त जी ने इसी बात को मन्थरा से कहलवाया है :-

" स्वामि-सम्मुख सेवक या भृत्य
आप ही अपराधी है नित्य।
x x x

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 44
2- वही, पृष्ठ - 45

भृत्य के लिए गुप्तजी का कहना है

भर्त्ता है भर्त्ता, भृत्य है भृत्य।"[1]

राम, लक्ष्मण सीता के वन जाने पर राजादशरथ के मानों दोनों हाथ टूट चुके थे। उनका जीवन उनको भारस्वरूप महसूस होने लगा एवं सुत-विरह के कारण उनकी मृत्यु भी होगई राजा को मृतावस्था में देख सारे अनुचर अधीर होकर क्रन्दन करने लगे, उन्हें लगा वे अब अनाथ हो गए हैं,क्योंकि राजा दशरथ अपने अनुचरों के साथ बड़ा प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे :-

"हा स्वामी ! कह ऊँचे रव से,
दहके सुमंत्र मानो दव से।
अनुचर अनाथ-से रोते थे,
जो धैर्य अधीर सब होते थे।"[2]

कुलगुरु

राज्य में प्रत्येक कार्य कलाप के लिए राजा अपने कुलगरु से मंत्रणा करते हैं। भारतीय समाज में गुरु की बड़ी महिमा गायी गयी है। गुरु को गोविन्द

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 48

2- वही, पृष्ठ - 179

के समकक्ष माना गया है। गुप्तजी ने भी कुलगुरु की महिमा का गुणगान किया है। राजा दशरथ अपने कुलगुरु वशिष्ठ से परामर्श लेते हैं :-

" भूप बैठे थे कुलगुरु संग
भरत का ही था छिड़ा प्रसंग
कहा कुलगुरु ने - " निस्सन्देह,
खेद है भरत नहीं जो गेह
किन्तु यह अवसर था उपयुक्त
कि नृप हो जावें चिन्तामुक्त। "[1]

स्वजन-प्रतिवेशी

स्वजन एवं निकटस्थ संबंध के लोग सुख एवं दुख में समान रूप से साथ देते हैं। दुःख के समय सांत्वना देकर पहाड़ सदृश दुःख को हल्का करना वे अपना धर्म समझते हैं। वन गमन के समय राम पिता को शान्त कराने के लिए स्वजनों से प्रार्थना करते हुए कहते हैं :-

" करें प्रस्थान इससे शीघ्र ही अब,
इन्हें दे सांत्वना मिलकर स्वजन सब। "[2]

समाज में पास-पड़ौसियों का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। गुप्तजी ने पड़ौसियों के रूप में कुल वधुओं का चित्रण किया है। कुलवधुओं के हृदय में अपने पड़ोस के प्रति प्रेम-भावना है। तभी तो वह सुदामा की स्त्री को सीधे कन्दमूल,

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 58
2- वही, पृष्ठ - 85

फल आदि दे जाती है :-

" तुझको तो सब भी कुल वधुएँ
सीधे दे जाती हैं,
मुनि-बालाएँ कन्द-मूल-फल
जब वन में लाती हैं।"[1]

राजा

राजा के उदात्त गुणों की चर्चा सर्वत्र की गयी है। दशरथ, राम और भरत तथा अन्यान्य राजाओं के आदर्श अनेक स्थलों पर वर्णित हुए हैं। राजकीय विनोद में उनके द्वारा शस्त्राभ्यास तथा हिंस्र पशुओं के उच्छेद को गिनाया गया है। राजा दुष्यन्त मृगया-सक्त तथा परम धर्मानुरागी हैं। " शकुन्तला " नामक खण्डकाव्य के आरम्भ में ही कवि ने राजा दुष्यन्त का इस प्रकार चित्रण किया है :-

" उन दिनों ही सर्वथा निज धर्म में अनुरक्त
आ गये सहसा वहाँ दुष्यन्त मृगयासक्त।"[2]

राजा का कार्य प्रजा की रक्षा करना तथा उसे अत्याचार के हाथ से बचाना है। राजा एक साधारण मनुष्य की भाँति प्रेमी भी होता है। उसे भी अपनी प्रिया का विरह त्रास देता है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 221
2- मैथिलीशरणगुप्त - शकुन्तला ; अठारहवाँ सं०, 2026 वि० ; पृष्ठ - 14

" शकुन्तला की चाह में होकर अधिक अधीर
फिरते थे दुष्यन्त नृप मंजु मालिनी-तीर।"1

राजा के रूप में पुरुष का चित्रण करते हुए गुप्तजी का कथन है कि राजा केवल प्रजा की रक्षा के लिए ही चिन्तित नहीं रहता है। " राजा " का सामाजिक एवं वाह्य रूप जो देखने को मिलता है उसके अतिरिक्त उसका व्यक्तिगत रूप भी है। अपनी प्रिया के विरह में उसकी अवस्था भी एक साधारण मनुष्य की भाँति होती है। उसे भी प्रिया-विरह में किसी प्रकार सुख भाता नहीं है। एवं राज काज में मन नहीं लगता :-

" सुध न थी सुख-साज-काज कहाँ गया,
और तो क्या राज-काज कहाँ गया।
खान पान कहाँ कि रुचि जाती रही,
सब गया बस याद ही आती रही।"2

राजा के रूप में पुरुष का चित्रण करते हुए गुप्तजी ने कहा है कि राजा महान शक्तिशाली होता है। वह वीरता पूर्ण युद्ध करते हुए जयश्री प्राप्त करता है। " शकुंतला " काव्य में दनुजों के साथ युद्ध करने में जब शक्र [इन्द्र] राजा [दुष्यन्त] की सहायता माँगते हैं तो राजा अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। :-

" नृप हुए संतुष्ट इस उत्कर्ष से,
दिव्य रथ पर चढ़ चले वे हर्ष से।
प्रबल भाव सदैव ही प्रतिपक्ष का
है प्रवर्द्धक वीर जन के वक्ष का।"3

1- मैथिलीशरणगुप्त - शकुन्तला ; अठारहवाँ सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 18
2- वही, पृष्ठ - 48
3- वही, पृष्ठ - 52

दुष्यन्त धीर ललित नायक है। शकुन्तला के प्रति उसका आकर्षण और प्रेम अद्वितीय है। दैव - दुर्विपाक-वश उससे च्युति हो जाती है। शकुन्तला से वियोग हो जाता है। किन्तु अन्त में दोनों का मिलन होता है और असह्य वेदना के दिन बीत जाते हैं।

राजा अपने प्रण का पालन करना अपना कर्तव्य समझता है। प्रदक्षिणा के अनुसार राजा दशरथ ने अपने प्रण की रक्षा के लिए ही [1] कैकयी के कहने पर राम को चौदह वर्ष का वनवास दिया :-

" दिये नृपति ने प्राण अन्त में
पर निज वचन नहीं टाला
सुख से बढ़ कर मान दुःख को
तात - सत्य प्रभु ने पाला "।

दरअसल राजा किसी भी स्थान पर अपनी प्रजा के लिए वरेण्य एवं काम्य है। राम के वन गमन के समय प्रजा भी उनके साथ जाना चाहती है :-

" जहाँ राम राजा हम सबके
वहीं रहेंगे हम सब भी। "[2]

राजा के लिए अपयश मृत्यु के समान है :-

"यदि अपकीर्ति मृत्यु-सम है तो
अकर्त्तव्य उससे भी घोर ;

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0; पृष्ठ- 2।
2- वही, पृष्ठ - 27

भूल मुझे भी अपने को भी,
देखो तात प्रजा की ओर।"[1]

प्रजा विरोधी तत्वों का उन्मूलन और धर्म संस्थापन राजा का पुनीत कर्त्तव्य है। धर्म-विरोधी राक्षसों का संहार करने के लिए राम की चेष्टाओं का वर्णन " प्रदक्षिणा " में भी किया गया है :-

" दूषण को सह सकते कैसे,
स्वयं सगुण-धन्वाधारी,
खर था खर, पर उनके शर थे,
प्रखर पराक्रम-विस्तारी।"[2]

देश में राजा का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। देश की अच्छी एवं बुरी दोनों स्थितियाँ राजा के गुणों(धार्मिक, दूरदर्शी)तथा अवगुणों पर निर्भर हैं। राजा यदि धीर,वीर,साहसी,उदार अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग हो एवं अपनी प्रजा के प्रति वह पूर्ण न्याय करे तो प्रजा उससे संतुष्ट रहती है, एवं राजा तथा प्रजा का सम्बन्ध बड़ा ही मधुर होता है। देश एवं राष्ट्र के लोगों पर अपने राजा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। राजा यदि आलसी, व्यभिचारी, भीरू, कापुरूष, अविवेकी, अधर्मी, और अन्यायी हो तो वह स्वयं तो डूबता ही है साथ ही समाज तथा राष्ट्र सभी को ले डूबता है। गुप्तजी ने अपने काव्य में सद्गुणों से युक्त एवं दुर्गुणों से युक्त दोनों प्रकार के राजाओं का चित्रण किया है। अपने " रंग में भंग " नामक ऐतिहासिक काव्य में कवि ने राजा के सुन्दर गुणों का वर्णन किया है। " रंग में भंग के आधार पर वीर नृपति हामाजी की मृत्यु के पश्चात् उनके दोनों पुत्र वरसिंह एवं लाल सिंह क्रमशः " बूंदी "तथा " मैनोली " राज्य के राजा हुए। ये दोनों राजा के रूप में अत्यन्त न्यायी एवं

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा : छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि : पृष्ठ -32
2- वही, पृष्ठ - 37

धार्मिक थे। कविवर गुप्तजी ने राजा के न्यायी एवं धार्मिक स्वरूप का चित्रण किया है :-

" वीर हामाजी नृपति जब स्वर्ग-वासी हो गये,
पुत्र तब उनके हुए वरसिंह बूँदी-नृप नये।
x x x
प्राण रहते तक उन्होंने न्याय को छोड़ा नहीं,
और अपने धर्म का बन्धन कभी तोड़ा नहीं।। "[1]

गुप्तजी राजा के लिए सत्यवादी होना आवश्यक मानते हैं। उनके अनुसार अच्छे राजा झूठ का खण्डन करते हैं। कवि वारूजी ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए राजा की झूठी प्रशंसा की। उस झूठी चाटुकारिता को सुनकर राजा कुपित होते हैं एवं वारूजी से कहते हैं :-

" खिन्न होकर भी अहो! तुमने भला यह क्या किया"
चाटुकारी में वृथा गौरव समस्त गँवा दिया। "[2]

राजा का शूरवीर होना आवश्यक है। उसे नारी-रूप या विश्व का कोई भी आकर्षण शौर्य-प्रदर्शन एवं देश-रक्षा से विरत नहीं कर सकता। यहाँ सीसोदिया रानी " सेतल " का ऐसा ही चित्रण हुआ है :-

" युद्ध को उद्यत हुए तत्काल राना भी वहीं
रोक सकता वीर को रमणी-स्मरण रण से नहीं
धन्य हो, तुम धन्य हो, शूराग्रणी सीसोदिया
प्राण रहते तक जिन्होंने वंश-व्रत पालन किया। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - हुँग में भंग ; सं0 2026 वि0 ; पृष्ठ - 4
2- वही, पृष्ठ - 11
3- वही, पृष्ठ - 16

शूर वीर राजा शरणागतों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। रंगभूमि नामक काव्य में विवाह-स्थल पर ही वर-पक्ष एवं कन्या पक्ष में भीषण युद्ध हुआ। वर-पक्ष के बचे हुए लोगों को राजा वीरसिंह अभयदान देते हुए कहते हैं :-

" आप भी करते सदा शरणागतों का वीर हैं,
प्रेम-वैर अयोग्य से रखते कदापि न धीर हैं। "[1]

राजा का कर्तव्य पाप रूपी दैत्य का दलन कर राज्य में शान्ति की स्थापना करना है। नहुष राजा के रूप में अत्यन्त प्रजा-वत्सल थे। राजा के रूप में वे सार्थक थे, कवि ने रानी के मुख से उनकी प्रशंसा की है :-

" पाली इसी भाँति प्रजा भू पर भी आपने,
दूर किये पाप-दैत्य जिनके प्रताप ने। "[2]

" कर्णहार " नामक लघुकाय खण्डकाव्य में कवि ने राजा के कुछ अनिवार्य गुणों का उल्लेख किया है। राजा को अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजग रहना चाहिए। वह प्रजा का प्रतिनिधि होता है। उसे प्रजा के समस्त कष्ट तथा दुःख का भंजन करना चाहिए। यदि वह ऐसा करने में अकुशल तथा असमर्थ है, उसमें पुरुषार्थ की कमी है, वह भीरु है तो वह त्याज्य है। प्रस्तुत काव्य में अपने आश्रयदाता ब्राह्मण-परिवार के शोक का कारण सुनकर कुन्ती इस राज्य के राजा के विषय में शंका व्यापित करती हुई कहती है :-

" हा! देश यह असहाय है
राजा यहाँ का कौन है?
कुछ यत्न वह करता नहीं ;

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; सं0 2026 वि0 ; पृष्ठ - 16
2- मैथिलीशरणगुप्त - नहुष ; सोलहवाँ सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 32

कर्तव्य से डरता नहीं
मरती प्रजा है और रहता मौन है।"[1]

भीरु एवं दुर्बलमन वाले लोगों को राजा बनाना निषिद्ध है :-

" यदि भीरु वह दुर्बलमना
तो व्यर्थ क्यों राजा बना
कर दे रहे हो तुम उसे किस बात का?
राजा प्रजा के अर्थ है
यदि वह अपटु, असमर्थ है,
कारण वही है तो स्वयं उत्पात का

x x x

राजा प्रजा का पात्र है,
वह लोक प्रतिनिधि मात्र है।"[2]

राजा यदि स्वयं भीरु है तो प्रजा के कष्टों का निवारण कदापि सम्भव नहीं :-

" वह भीरु है, फिर ठीक ही यह कष्ट है।"[3]

"राजा प्रजा " में काव्यकार ने राजा के गुणों का वर्णन करते हुए कहा है कि राजा को अकुलश नहीं होना चाहिए। राजा में इतनी शक्ति होती

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; 2021 वि0 ; पृष्ठ - 21

2- वही, पृष्ठ - 22

3- वही, पृष्ठ - 23

है कि वह जब जो कहता है प्रजा उसको करने के लिए तत्पर रहती है :-

" अनुचर बनूँ क्यों, हुआ न कोई होगा
जिसने मुझ जैसा राग-रंग-रस भोगा,
जन जन ने मेरा बोझ सहा हँस-रोकर
मैंने जब जो कह दिया, रहा वह होकर।"[1]

राजा चाटुकारिता से घृणा करते हैं, राजा कहता है :-

" पर देवों के भी चाटुकार न बनो तुम,
अपनी आत्मा को कभी न आप हनो तुम।"[2]

सुशासक नहीं चाहता है कि उसके समाज में फूट फैले, वह राज्य के प्रति सदैव सजग एवं सतर्क रहता है। राजा के इन कथन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है :-

" फिर फूट न फैले, सजग सतर्क निरखना
जो रत्न भाग्य से मिला, यत्न से रखना।"[3]

गुप्तजी के अनुसार प्रजाओं का हित करना, राष्ट्र का व्यापक रूप में प्रसार करना उसे संकीर्णता के मार्ग से ऊपर उठा कर उन्नत करना राजा का धर्म है :-

" जन समष्टि में रमो, व्यष्टि को विकसित करके,
निज हित होगा स्वयं सफल सबका हित करके
नहीं रहा संकीर्ण और अब राज्य हमारा
वह विराट हो गया राष्ट्र राजा के द्वारा।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - राजाप्रजा ; प्रथमावृत्ति,2013 वि० ; पृष्ठ - 7
2- वही, पृष्ठ - 9
3- वही, पृष्ठ - 9
4- वही, पृष्ठ - 46

गुप्तजी के अनुसार राजा को जन-नायक बनने के लिए स्वार्थ का परित्याग करना पड़ता है एवं राष्ट्र के व्यापक प्रसार हेतु उसे सहायक रूप में कार्य करना पड़ता है :-

" राज्यश्री तुमने स्वराष्ट्र पर अपनी वारी
इतना करके ही कृतार्थता नहीं तुम्हारी,
उसके व्यापक सदुपयोग में बनो सहायक।
हो सकते हो अब यथार्थ ही तुम जन नायक।"[1]

द्वापर खण्ड काव्य में राजा के रूप में कंस का चित्रण हुआ है। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि कहा जाता है। उसे अत्याचारी, अविचारी, अन्यायी, बर्बर नहीं होना चाहिए, कंस के अविचारी, अन्यायी स्वरूप को देख कर देवकी आत्मकथन करती है कि राजा का वास्तविक-रूप फिर क्या है :-

" राजा! प्रभो यही राजा है
तेरा प्रतिनिधि? धिक धिक !
× × ×

कंस की स्वेच्छाचारिता को देख कर उसका कहना है :-

" धिक् तुमको, तेरे राजा को
वह है स्वेच्छाचारी;
अविचारी, अन्यायी, बर्बर,
केवल पशुबल-धारी।"[2]

राजा कंस नियति पर विश्वास नहीं करता। वह स्वयं को ही अपने भाग्य का स्वामी मानता है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - राजा-प्रजा ; प्रथमावृत्ति,2013 वि० ; पृष्ठ - 28
2- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 87

" नियति कौन है? एक नियन्ता
मैं ही अपना आप।"1

नियन्ता इन मर्यादाओं को नहीं मानता। वह शक्ति का उपासक है। उसका कहना है सबल व्यक्ति किसी भी बाधा, विघ्न, बन्धन तथा मर्यादा को स्वीकार नहीं करता :-

" जितने भी बन्धन हैं, वे सब
अबलों के ही अर्थ;
बन्धन बन्धन ही है, तोड़ो,
यदि तुम सबल समर्थ।"2

वह मत्स्यन्याय को मानने वाले हैं। शक्ति शाली द्वारा निर्बल का हड़पा जाना मत्सन्याय कहलाता है :-

" अटल एक ही न्याय जगत में,
वह है मत्स्य न्याय;
और एक ही असमर्थों का
है बस मरण उपाय।"3

इन ईश्वर तथा नियति में विश्वास नहीं करता इसीलिए अपने आपको अपना कर्त्ता मानता है। उसे अपनी शक्ति पर विश्वास है, अपनी सिद्धि पर उसे दंभ है :-

" बढ़ा-बढ़ा कर जन्म-जन्म में
मैं मन के संस्कार

1- मैथिलीशरणगुप्त- द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 110
2- वही, पृष्ठ - 112
3- वही, पृष्ठ - 113

मर सकता क्या नहीं एक दिन
जग-जग पर अधिकार!
x x x
क्या कर सकता नहीं बाप में
मेरा कर्ता कौन!
कोई सिद्धि, जिसे मैं चाहूँ
उसका हर्ता कौन!"[1]

शासक के रूप में कंस अत्यन्त अत्याचारी तथा नृशंस है। उसे पाप पुण्य की चिंता नहीं। देवकी के पुत्रों की निर्ममता से हत्या करने वाला कंस नारद की भविष्यवाणी से भयभीत तो होता है, परन्तु उसका पौरुष एवं साहस अन्त-तक बना रहता है :-

"भ्रम हो असत्य हो,
संशय अनृत, यथार्थ
जो भी हो, आ जावे खुलकर
देखें फिर पुरुषार्थ।"[2]

राजा का प्रजा से प्रेम पूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए। राजा दशरथ के राज्य में राजा-प्रजा का पारस्परिक प्रेम सर्वथा पूर्ण है :-

"पूर्ण है राजा-प्रजा की प्रीतियाँ।"[3]

सत्य तो यह है कि जहाँ शक्तिशाली राजा न होकर अगणित छोटे-छोटे राजा होते हैं वहाँ राष्ट्र की शक्ति छिन्न-भिन्न हो जाती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि० ; पृष्ठ - 114
2- वही, पृष्ठ - 121
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 14

" एक राज्य न हो, बहुत से होजहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ। "[1]

राजा के कार्यों को दिग्दर्शित कराते हुए गुप्त जी ने लिखा है कि राजा का कार्य जनता की रक्षा करने के साथ-हीसाथ मुनियों के संकट को दूर करना भी है। राम को वनवास देते हुए दशरथ दुःखी हो जाते हैं तब राम कहते हैं :-

" उभय विध होगा लोक रंजन
यहाँ जन-भय वहाँ मुनि-विघ्नभंजन
मुझे या आप ही बाहर विचरना;
धरा का धर्म-भय था दूर करना। "[2]

राजा का कार्य भूमि को पाप एवं अत्याचारों से मुक्त करना है। वन में धार्मिक आचार में रत रहने वाले मुनियों की तपस्या में पड़ने वाले विघ्नों एवं उनके भय को दूर करना उनका कर्त्तव्य है। कुलगुरु वशिष्ठ राम को आशीर्वाद देते हुए कुछ ऐसा ही कहते हैं :-

" मुनि-रक्षक-सम करो विपिन में वास तुम,
मेटो तप के विघ्न और सब त्रास तुम,
हरो भूमि का भार भाग्यसे ल-यतुम
करो आर्य-सम वन्य चरों को सभ्यतुम। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 17

2- वही, पृष्ठ - 74

3- वही, पृष्ठ - 125

" यशोधरा " नामक काव्य में कवि ने राजा को राज्य के लोगों का दुःख एवं शोक दूर करते हुए दिखाया है :-

" हे शोक, न कर तू रोक-टोक
पथ देख रहा है आर्त्त लोक,
मेटूँ मैं उसका दुःख शोक,
बस, लक्ष्य यही मेरा ललाम। "1

राजा के रूप में सिद्धार्थ अपने को तभी उपयुक्त समझते हैं जब वे दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्टों को दूर करने में समर्थ हों एवं सर्वत्र लोक-कल्याण का झण्डा फहराए :-

" मैं त्रिविध-दुःख विनिवृत्ति-हेतु
बाँधू अपना पुरुषार्थ-सेतु ;
सर्वत्र उड़े कल्याण-केतु ,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम। "2

राजा सिद्धार्थ का विचार है कि देश में वास्तविक स्वराज्य का आगमन उसी दिन होगा, जिस दिन संसार के समस्त मनुष्यों के हृदय में विश्व जनीन भावना का प्रसार हो जाएगा। सिद्धार्थ का कहना है कि उनकी दृष्टि में उस दिव्य ज्योति का आगमन हो जिसमें किसी प्रकार का भेद-भाव न पड़े। जीवन तभी धन्य होगा, विजयोल्लास का वास्तविक एवं चरम आनंद तभी प्राप्त होगा जब हम अपने सहृदयतापूर्ण आचरण तथा विचारों से मानवमात्र के हृदय को जीत लेने में समर्थ होंगे :-

" आ, मित्र-चक्षु के दृष्टि लाभ,
ला हृदय-विजय-रस वृष्टि लाभ
पा है स्वराज्य, बहु-सृष्टि लाभ। "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; 2017 वि० ; पृष्ठ - 19
2- वही, पृष्ठ - 19, 3- वही, पृष्ठ - 20

" सिद्धराज " नामक खण्डकाव्य में जयसिंह की माता के रूप में मीनलदे का सुन्दर चित्रण हुआ है। मीनलदे के पति का स्वर्गवास तभी हुआ था जब जयसिंह तीन वर्ष का था। मीनलदे ने राजपुत्र को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा दी एवं उसे एक योग्य राजा के रूप में तैयार कर दिया, उसको युवराजोचित शिक्षा देने के लिए उसने अपने मृदु माँ के मन को अधिक से अधिक दृढ़ कर लिया और उसने बालक जयसिंह को इस प्रकार शिक्षा दी कि अब वह अपने राज्य को स्वयं सुचारू रूप से चला सकता है :-

" हो गया युवक, इस योग्य निज राज्य जो
आप ही सँभाले और पाले प्रजा प्रीति से,
नीति से, उचित रीति रखे भीति छोड़ के
कर सके योग्य व्यवहार शत्रु-मित्र से।
रोता रहा मृदु माँ का मन, फिर भी
मैंने दृढ़ होकर दिलाई उसे शिक्षा है ;
दे जो सकती थी एक नारी, कुल-दीक्षा दी।"[1]

माँ का हृदय अपनी सन्तान के प्रति कितनी ममता रखता है इसका सुन्दर उदाहरण कवि ने " सिद्धराज " काव्य में प्रस्तुत किया है। युद्ध में शूरवीर स्वामी के वीर गति प्राप्त होने पर स्त्री विचलित नहीं हुई। उस अबला ने अपने पुत्र का यथोचित पालन पोषण किया पुत्र के प्रति अत्यधिक ममत्व होने के कारण माता उसे आँखो से ओझल नहीं करना चाहती। अत: उसे पुरोहित से धर्म की एवं कुल कर्म की शिक्षा दिलाती है :-

" वीर गति पाई जब मेरे शूर स्वामी ने,
मेरा यह बेटा तब दुग्ध-पोष्य शिशु था।

x x x

1- मैथिलीशरणगुप्त - सिद्धराज ; बारहवाँ सं०, 2011 वि० ; पृष्ठ - 9

" माता इसे मैंने, किन्तु अबला थी, इससे
आँखों से हटा सकी न दूर तो भी गाँव में
पण्डित हैं एक, वे पुरोहित हमारे हैं,
उनसे दिलाई इसे शिक्षा निज धर्म की,
सीखा कुल कर्म जाति बन्धुओं में इसने। "1

" सिद्धराज " नामक खण्ड काव्य में कवि ने राजा जयसिंह का चित्रण करते हुए राजा के कुछ गुणों की ओर संकेत किया है। राजा जयसिंह को जब ज्ञात हुआ कि जो अकिंचन तीर्थ-कर देने में असमर्थ हैं उन्हें देव-दर्शन से लौटा दिया जाता है तब वे अत्यन्त क्षुब्ध होते हैं। कर का निर्देश पत्र देखकर उन्हें ज्ञात होता है कि इससे प्रति वर्ष लाखों रुपयों का लाभ होता है फिर भी वे उसे फाड़ फेंकते हैं। माता के यह पूछने पर कि राजकोष की पूर्ति कैसे होगी, राजा जयसिंह कहते हैं :-

" राजकोष रिक्त हो, तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा की सुख-सिद्धि, निधि-वृद्धि हो,
पुष्ट प्रजा-जन ही हैं सच्चे धन राजा के। "2

मुनि और विघ्न

गुप्तजी ने मुनि का चित्रण करते हुए बताया है कि उनका काम साधना करना, उपासना करना तथा यज्ञ करना है। वेद धार्मिक आचार के माध्यम से सामाजिक उन्नति में लीन रहते हैं। यज्ञ करने में दैत्यों द्वारा बाधा पड़ने पर

1- मैथिलीशरणगुप्त - सिद्धराज ; बारहवाँ सं0, 2011 वि0 ; पृष्ठ - 12
2- वही, पृष्ठ - 27

कौशिक मुनि राजा दशरथ के पास राघव को माँगने गये :-

"इसीलिए माँगा राघव को,
कौशिक ने मख-रक्षा हेतु।"[1]

सांसारिक जीवन से विरत रहकर भी मुनिजन सामाजिक तथा मांगलिक अनुष्ठानों में अंश ग्रहण करते हैं। सीता-स्वयंवर में राजा जनक कौशिक मुनि को आमन्त्रित करते हैं :-

" दिया निमंत्रण मिथिलाधिप ने
मुनि को सुता स्वयंवर का।"[2]

गुप्तजी ने अपने काव्य " रंग में भंग " में विष्णु का चित्रण किया है। लालसिंह नरेश की पुत्री से क्षेमाल राजा का विवाह सम्पन्न कराते हुए विष्णु वेद-मन्त्र का उच्चारण करने लगते हैं :-

" विष्णुवर पढ़ने लगे तब वेदमन्त्र विधान से,
वर-वधू शोभित हुए एकत्र रूप-निधान से।"[3]

मुनियों का जीवन बड़े ही संयम, तप और त्याग से समलंकृत हुआ करता था। भौतिक उपभोगों से दूर रहकर वे काया की स्थूल कामनाओं का नियंत्रण तथा माया के बंधनों का अतिक्रमण करते थे। " रत्नावली " नामक खण्डकाव्य में कवि ने उसकी वेशभूषा पर दृष्टि डाली है :-

" व्याघ्रचर्म हो वा मृगचर्म
रक्षा है इनों क्यामर्म।

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं0 , 2026 वि0 ; पृष्ठ - 11
2- वही, पृष्ठ - 14
3- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; सं0 2026 वि0 ; पृष्ठ - 9

जटा -भस्म है वेश मात्र,
और कमंडलु एक पात्र,
साधन का उपकरण गात्र।"1

गुप्तजी ने अपने काव्य " शकुन्तला " में मुनि का चित्रण करते हुए कहा है कि मुनि संसार के प्रति उदासीन होकर भी संसार के लोगों पर दयालु होता है :-

" जग से उदासीन होकर भी
होते हैं मुनि सदय बड़े।"2

गुप्तजीनेमुनि के क्रोधित रूप का भी वर्णन किया है। पति की चिंता में लीन शकुन्तला को दुर्वासा मुनि के आगमन का पता न चला फलत: वह मुनि की यथोचित अ-यर्थना न कर सकी। मुनि ने अपमानित होकर उसे अभिशप्त किया :-

" धीर गति से देवात् पधारे वहाँ,"3
x x x
" चिन्ता में जिसकी निमग्न रहके देखा न तूने मुझे,
स्वामी में तपका, तथापि कुछ भी लेखा न तूने मुझे।"4

" भारत-भारती"नामक कृति में मैथिलीशरण गुप्तजी ने दण्डी नाम मुनि की प्रशंसा करते हुए उनके पाण्डित्य की ओर संकेत किया है। जिस समय सिकन्दर भारतवर्ष में आया था, उस समय यहाँ दण्डी नाम के एक मुनि थे। उनकी प्रशंसा सुन कर सिकन्दर ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने आना स्वीकार नहीं किया। सिकन्दर उनके पास पहुँचा। उनके द्वारा उपदेश सुनकर अपने

1- मैथिलीशरणगुप्त - रत्नावली ; प्रथमावृत्ति, 2017 वि0; पृष्ठ- 58
2- मैथिलीशरणगुप्त - शकुन्तला ; अठारहवाँ सं0, 2026 वि0; पृष्ठ - 8
3- वही, पृष्ठ - 28
4- वही, पृष्ठ - 29

को कृत-कृत्य समझा :-

" कुमाणि पाकर भी उन्हें डरता स्वयं वज्री सदा,
है तुच्छ उनके निकट यद्यपि उस सुरप की सम्पदा।
यद्यपि उटज वासी तदपि वह तत्व उनके पास है,
आकर अलेकजेंडर - सदृश सम्राट बनता दास है। " ।[1]

उपर्युक्त घटना का उल्लेख करके मैगास्थनीज कहता है कि जिसने (सिकन्दर ने) अनेक जातियों को परास्त किया था, वह भारतवर्ष के एक नग्न मनुष्य से परास्त हो गया ।

मुनिजन अधम एवं आततायियों को संहार करवाकर धर्म की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। ताड़का को अबला समझकर राघव का हाथ जब उसे मारने से रुक जाता है तब कौशिकमुनि का कहना है :-

" - मारो,
निस्संकोच इसे है तात
अधम आततायी जो भी हो
समुचित है उसका अभिघात ।"[2]

वे लोक कल्याणार्थ सत्पात्रों के हाथ में मंत्रपूत शस्त्रास्त्र दिया करते थे :-

" मुनि ने उनके वीर पुत्रों को
समक्ष शुभाजन शीलनिधान,

1- मैथिलीशरणगुप्त - भारत-भारती ; इकतीसवाँ संस्करण, 2023 वि0;पृ0-67

2- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0; पृष्ठ - 13

दिया आप उपहार-रूप में
बला और अतिबला-विधान।"[1]

"प्रदक्षिणा" नामक काव्य में गुप्तजी ने मुनि के क्रोधित रूप का भी चित्रण किया है। सीता-स्वयंवर में शूरवीर राम के द्वारा धनुष तोड़े जाने पर मुनि परशुराम अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते हैं। उनका कोप अपनी सीमा पार कर जाता है वह कहते हैं :-

"मैं वह परशुराम हूँ, जिसने
किया क्षत्रियों का संहार।"[2]

राम के द्वारा शिव-धनुष तोड़े जाने पर परशुराम क्रुद्ध होकर अपना वैष्णव चाप चढ़ाने के लिए कहते है :-

"सुना न कुछ भी परशुराम ने
उनका ऐसा क्रोध बढ़ा;
बोले प्रभु से - 'ले, तू यह
मेरा वैष्णव चाप चढ़ा।"[3]

द्वापर के कवि ने तत्कालीन तपस्वी नारद का चित्रण किया है।तपस्वी पापियों को पाप से हटाकर उसको सुधार की ओर ले जाता है तथा उसे मुक्ति दिलाने में योग देता है। वाल्मीकि जैसे दुष्टात्मा को श्रेष्ठ ऋषि में बदल देना तपस्वी का ही काम है।

"क्या वाल्मीकि-समान व्यक्ति का
नारद ही आचार्य नहीं?"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 12
2- वही, पृष्ठ - 19
3- वही, पृष्ठ - 18
4- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; सं0 2027 वि0 ; पृष्ठ - 79

तपस्वी जन त्रिकालज्ञ होते हैं। वे वर्त्तमान, भूत एवं भविष्य तीनों काल की बात जानते हैं। इसी बात को कवि ने रामके मुख से कहलवाया है। राम वन प्रस्थान करते समय गुरु वशिष्ठ से कहते हैं :-

" त्रिकालज्ञ हैं आप, आपकी बात से,
हुए भविष्य चिह्न मुझे ही ज्ञात से। "[1]

" नहुष " नामक खण्डकाव्य में नारद मुनि का चित्रण हुआ है। वे ध्यानस्थ शची की अवज्ञा पाकर नहुष से भेंट करते हैं। वे नहुष के उत्थान से अत्यन्त प्रसन्न हैं। नहुष से वे कहते है :-

" दुर्लभ तुम्हें क्या आज कोई भी पदार्थ है?
x x x
शेष अब कौन-सा सुफल तुम्हें पाने को। "[2]

मुनिजन वन में सात्विक वेश धारण करते हैं। वन जाते हुए राम के वल्कल पहनकर तापस बनने में इस बात का ज्ञान हो जाता है कि तत्कालीन मुनिजन वल्कल पहनते थे। राम कहते हैं :-

" अब वल्कल पहनूँ बस मैं,
जोगी वनोचित तापस मैं।
यही रजोगुण-लेश रहे,
वन में सात्विक वेश रहे। "[3]

मुनियों की अनुकरणीय जीवन-चर्या बड़े-बड़े लोगों के लिए लोभनीय वस्तु हुआ करती थी। राम प्रसन्न हैं कि उन्हें वन में कष्ट भले ही हो, किन्तु

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० : पृष्ठ - 125
2- मैथिलीशरणगुप्त - नहुष ; सोलहवीं सं० , 2024 वि० ; पृष्ठ - 25
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० : पृष्ठ - 114

मुनियों से बहुत कुछ सीखने का स्वर्ण-सुयोग प्राप्त होगा :-

" मुझे वन में कुछ आयास होगा
सतत मुनि-वृन्द का सहवास होगा। "1

वल्कल धारण करना गौरव और गांभीर्य का सूचक माना जाता था। राम भी वन जाते समय राजोचित वेशभूषा का परित्याग कर वल्कल पहनते हैं। उस समय गुरु वशिष्ठ उनसे कहते हैं :-

" हम आज सुगौरव युत हुए
सुत, तुम वल्कल पहन, शिष्य से सुत हुए। "2

मुनियों को तत्कालीन समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था, वे तत्व ज्ञानी होते थे उनके सत्संग से लोग स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते थे। मुनियों के सम्पर्क में रहकर लोग नाना प्रकार के ज्ञानार्जन करते थे। लक्ष्मण वन में मुनियों के सत्संग में रहते हुए सोचते हैं :-

" मुनियों का सत्संग यहाँ है,
जिन्हें हुआ है तत्व-ज्ञान
सुनने को मिलते हैं उनसे
नित्य नये अनुपम आख्यान। "3

गुप्तजी ने "पंचवटी" काव्य में मनुष्य के कर्मठ संकल्पों का चित्रण योगी रूप में किया है। " पंचवटी " की निम्नलिखित पंक्तियाँ लक्ष्मण को योगी रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है :-

" पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 82
2- वही, पृष्ठ - 125,
3- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2028 वि0 ; पृष्ठ - 15

" उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर वीर निर्भीकमना।
जाग रहा यह कौन धनुर्धर
जब कि भुवन भर सोता है;
भोगी कुसुमायुध योगीसा
बना दृष्टि-गत होता है। "[1]

राजकर्मचारी

गुप्तजी ने अपने विभिन्न काव्यों में मन्त्री, सेनापति अमात्य आदि का भी चित्रण किया है। अक्रूर राजा कंस के अमात्य के रूप में चित्रित हैं। अमात्य को राजा का आज्ञाकारी होना चाहिए। अमात्य अक्रूर भी अत्यन्त आज्ञाकारी हैं। वे अपने राजा की नीति एवं कार्य प्रणाली से सहमत नहीं तथापि आज्ञाकारी होने के ही कारण कृष्ण को लेने व्रज जाते हुए आत्मकथन करते हैं :-

" काम क्रूर अक्रूर नाम है,
क्रंक बना बनाया। "[2]

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2028 ; पृष्ठ - 6
2- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि0 ; पृष्ठ - 130